अमृत पाल सिंह,
pal3amrit@gmail.com,
डा॰(श्रीमति) पूजा गुप्ता
pooja.gupta@niu.edu.in

पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों के संदर्भ में समकालीन भारतीय शिक्षक शिक्षा की स्थिति : एक विश्लेषण

सारांश

भारत में शिक्षक शिक्षा की स्थिति इन दिनों अनुचिंतन व परिवर्तन के दौर से गुज़र रही है। चूँकि, शिक्षक शिक्षा के दो वर्षीय प्रारूप की पाठ्यचर्या को तीन साल से पहले बदला या बंद नहीं किया जा सकता था, इसलिए तीन वर्ष पूरा होने के पश्चात् अब पुन: बी॰ एड॰ कार्यक्रम की पाठ्यचर्या बदलाव के विभिन्न आयामों में परिलक्षित की जा रही है। ऐसे में, पुन: यह प्रश्न उभरकर सामने आ रहा है कि कहीं दुबारा से शिक्षक शिक्षा सम्बन्धी नवीन कार्यक्रम यथार्थ से तालमेल बिठा पायेंगे अथवा नहीं ? यह ध्यान रखना होगा कि पूर्व की पाठ्यचर्याओं को लागू करने की जल्दबाज़ी से जो उलझने और समस्याएँ उभरकर सामने आई थीं, उनसे सीख ली जाए। पाओलो फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचार इन समस्याओं के उपजने के वास्तविक कारणों को समझने में सहायक हो सकते हैं; और अनुचिंतन व विश्लेषण से ही शिक्षक शिक्षा सम्बन्धी नवीन पाठ्यचर्याओं को समयानुकूल और बेहतर बनाया जा सकता है।

भूमिका

शिक्षा वैचारिकी में शिक्षक शिक्षा को सदैव ही एक गंभीर अनुचिंतन का विषय माना जाता रहा है। यह देखा गया है कि यदि, शिक्षकों का प्रशिक्षण सही तरीके से न हो, तो इसका सीधा व प्रत्यक्षत असर विद्यालयी शिक्षा की स्थिति पर पड़ता है। ऐसा इसलिए, क्योंकि यदि शिक्षकों के प्रशिक्षण में अनुचिंतन, नवाचारों व ज्ञान के क्षेत्र में होने वाली अद्यतन खोजों का ध्यान नहीं रखा जाएगा, तो तथाकथित प्रशिक्षित शिक्षक कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों के बीच शिक्षा के वास्तविक लक्ष्यों का प्रसार ठीक से नहीं कर सकेंगे; और इससे जो भी भावी पीढ़ी तैयार होगी, वह ज्ञान के आविष्कार व पुनराविष्कार से न जुड़कर ज्ञान को एक ऐसी वस्तु मानने को ही अपना कर्म समझने लगेगी, जिसका क्रय-विक्रय किया जा सकता हो। पाओलो फ्रेरे के अनुसार ज्ञान होता है - आविष्कार और पुनराविष्कार करने से, उस बेचैन, अधीर, सतत और आशायुक्त जिज्ञासा से, जिसकी पूर्ति के लिए मनुष्य विश्व के साथ और एक-दूसरे के साथ सक्रिय होते हैं।[1]

भारत में जब से शिक्षा को अधिकार का दर्ज़ा दिलाने की मुहीम ने ज़ोर पकड़ा है, तभी से शिक्षा की दृष्टि से उदारता का आचरण करने वाले व मिथ्या उदारता की अभिव्यक्ति करने वाले, दोनों तरह के व्यक्तियों की अभिव्यक्ति का प्रकटीकरण बढ़ा है। प्रथमत:, उदारता की दृष्टि का वैधानिक प्रकटीकरण संवैधानिक संशोधनों के रूप में नज़र आया, परंतु शीघ्र ही विभिन्न अनुच्छेदों में हुए संशोधनों ने उदारता के दृष्टिकोण के पीछे छिपी मिथ्या उदारता को प्रकट कर दिया। अनेक प्रतिवेदनों व अध्ययनों से यह प्रकट हुआ है कि सरकारें शिक्षा को सामाजिक कल्याण के रूप में मानने की सोच से पीछे हट रही हैं। फलस्वरूप, शिक्षा में मिथ्या उदारता का प्रकटीकरण वाले व्यक्तियों व संस्थाओं की संख्या में वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि में कहीं-न-कहीं अच्छी समझी जाने वाली शिक्षा के मानकों से समझौता करना सन्निहित रहा है। इस विषय पर चर्चा करते कई शोधों और प्रतिवेदनों का अध्ययन शिक्षक-शिक्षा से संबंधित कुछ ऐसे सरोकार सामने रखता है जो आज गहन चिंतन का विषय बन गये है। कुछ ऐसे ही

1. पाओलो फ्रेरे (1997), उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र (अनुवाद: रमेश उपाध्याय), ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, नई दिल्ली, पृ॰-34.

सरोकारों को इस लेख में व्यक्त करने का प्रयास किया गया है जिस पर हम एक सामूहिक समझ बना सकें और तद्नुसार सुधार की योजनाओं में पूरा योगदान दे सकें।

यह देखा जा सकता है कि जैसे ही शिक्षा के अधिकार कानून को अमल में लाने के प्रयास में तेज़ी आई, यह आवश्यकता महसूस की जाने लगी कि यदि, विद्यालयों में प्रवेश के योग्य सभी बच्चों की विद्यालय में पहुँच को सुनिश्चित किया जाये, तो नवीन विद्यालयों और विद्यालयों में नवीन शिक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए नवीन शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थानों की आवश्यकता भी होगी। इससे उदारता व मिथ्या उदारता का प्रकटीकरण करने वाले संस्थानों की संख्या में तीव्र वृद्धि दर्ज़ की गई। इन संस्थानों की संरचनात्मक व पाठ्यचर्यात्मक गुणवत्ता का प्रत्यक्षत: व अप्रत्यक्षत: मूल्यांकन करने का काम कई वैधानिक निकायों के अंतर्गत है; जैसे – एन०ए०ए०सी०, सी०बी०एस०ई०, एन०सी०टी०ई०, ए०आई०सी०टी०ई०, डी०ई०सी० व सम्बद्ध विश्वविद्यालयों के संबद्धता विभाग इत्यादि। ये उपर्युक्त निकाय या तो विभिन्न पाठ्यक्रमों की गुणवत्ता की जांच करते हैं या विभिन्न संस्थानों की अधिसंरचना व क्रियाकलापों (शैक्षणिक व गैर शैक्षणिक) की गुणवत्ता की जांच-परख करते हैं या गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हेतु अनुसंधान एवम् सर्वेक्षण का कार्य करते हैं।

भारत में पूर्व में यह देखा गया गया कि ऐसे शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थानों को भी एन०सी०टी०ई० व सम्बद्ध विश्वविद्यालयों से मान्यता मिल गई थी, जो कि पूर्व निर्धारित मानकों पर खरे नहीं उतरते थे। यह सदैव से ही अनुचिंतन का विषय रहा है कि मानकों पर खरे न उतरने वाले इन शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थानों को एन०सी०टी०ई० व सम्बद्ध विश्वविद्यालयों से मान्यता कैसे प्राप्त हो गई थी?

इसके मूल में अधोलिखित कारण देखने में आए –

- निरीक्षण से पूर्व ही इन संस्थानों को यह पता चल जाना कि निरीक्षण किस दिन होगा। परिणामस्वरूप, ऐसे संस्थानों द्वारा एक या दो दिनों के लिए किसी संस्था की 'बिल्डिंग' या स्वयं की 'बिल्डिंग' में मूलभूत सुविधाओं की व्यवस्था दिखा देना।
- निरीक्षण दस्ते के सभी सदस्यों का प्रतिनियुक्ति पर होना।
- निरीक्षण दस्ते के सदस्यों का गैर अनुभवी होना।
- निरीक्षण दस्ते के सदस्यों का गुणवत्ता के मानकों की बजाय अन्य बिन्दुओं पर 'फ़ोकस' करना।
- एक-दो दिनों के लिए संस्थान द्वारा शिक्षकों व कर्मचारियों की उपस्थिति को दिखा देना; व उपस्थिति 'रजिस्टर' व अन्य दस्तावेज़ों को सही से बना लेना।
- अनुपस्थित्त शिक्षकों को अध्ययन अवकाश, मातृ अवकाश या पितृ अवकाश पर दर्शा देना।
- संबन्धित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान द्वारा निरीक्षण दस्ते के सदस्य या सदस्यों को अन्य अवांछनीय व्यक्तिगत लाभ प्रदान करना, इत्यादि।
- उपर्युक्त संस्थानों के प्रति जैसे-जैसे जागरूकता बढ़ी, वैसे-वैसे एन०सी०टी०ई० व सम्बद्ध विश्वविद्यालयों ने अन्य प्रबंध करने आरम्भ कर दिए, ताकि ऐसे संस्थानों की वृद्धि व उत्पत्ति को रोका जा सके। इसके लिए अग्रलिखित उपाय किए गए –
- एक वर्षीय बी०एड० पाठ्यक्रम में किसी संस्थान द्वारा अतिरिक्त 'सीटें' प्राप्त करने के लिए एन०ए०ए०सी० से 'ए' या 'बी' 'ग्रेड' प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया।
- निरीक्षण हेतु अनुभवी लोगों की सेवाओं को लिया जाने लगा।
- संबंद्धित विश्वविद्यालयों द्वारा निरीक्षण दस्ते का भेजना सुनिश्चित किया गया।
- एन०सी०टी०ई० द्वारा बी०एड० और अन्य शिक्षा-पाठ्यक्रम सम्बन्धी संस्थानों के आंकड़ों की 'ऑनलाइन' उपलब्धी सुनिश्चित की गई।
- शिक्षा कार्यक्रम की पाठ्यचर्या में व्यापक बदलाव किए गए।
- वर्ष में एक से अधिक बार शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों का निरीक्षण किया जाने लगा, इत्यादि।

उपर्युक्त उपायों ने यद्यपि, मिथ्या शिक्षक-प्रशिक्षण

संस्थानों की खरपतवार को खत्म किया, परंतु यह देखा जा सकता है कि इन उपायों ने शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में उन मूलभूत कौशलों का विकास नहीं के बराबर ही किया, जिससे उनके स्तर में गुणात्मक सुधार होता । इसके पीछे छिपे कारणों को अग्रलिखित विवेचन-विश्लेषण से समझा जा सकता है -

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की पाठ्यचर्या में बदलाव से पहले किए गए अनुसंधान

बी॰एड॰ पाठ्यचर्या में बदलाव से पहले ऐसे संस्थानों का दौरा किया गया, जहाँ दो वर्ष या चार वर्ष का शिक्षा पाठ्यक्रम चल रहा था। यह पाया गया है कि वहाँ अनमने ढंग से ही एक-दो दिनों का दौरा किया गया । यह भी देखा गया कि दो या चार वर्ष के पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों व शिक्षकों को क्या समस्याएँ आ रही हैं, इसका ठीक प्रकार से विश्लेषण किए बिना ही शिक्षा कार्यक्रम की पाठ्यचर्या में बदलाव करने की अनुशंसा कर दी गई । उपर्युक्त संस्थानों की पाठ्यक्रम संचालन संबंधी प्रमुख दिक्कतें इस प्रकार से थीं –

- दो वर्षीय शिक्षा कार्यकर्मों में विद्यालयी विषयों के शिक्षण का कार्य शिक्षा विभाग से जुड़े व्यक्ति नहीं कर रहे थे, बल्कि इन विषयों को कला व मानविकी और गणित व विज्ञान विभाग से जुड़े व्यक्ति पढ़ा रहे थे, जो कि स्वयं शिक्षा उपाधि धारक नहीं थे।
- इन संस्थानों में वही बच्चे पढ़ने को आ रहे थे, जिनका प्रवेश या तो एक वर्ष वाले बी॰एड॰ 'कोर्स' में नहीं हो सका था या जो विज्ञान, कला व प्रबंधन के अन्य विषयों में प्रवेश नहीं ले पाए थे।
- दो व चार वर्षीय शिक्षा कार्यक्रमों की पाठ्यचर्याओं का अद्यतन न होना, इत्यादि।

यह स्पष्ट है कि यदि उपर्युक्त समस्याओं को ध्यान में रखे बिना ही शिक्षा कार्यक्रम में नवीन पाठ्यचर्याओं की अनुशंसा की जाएगी, तो इससे गुणात्मकता संबंधी व्यवहारगत समस्याएँ पैदा हो जाएँगी, जिनसे बचने के लिए संस्थान आसान रास्ता तलाश करने लगते हैं । अब यह भी स्पष्ट होने लगा है कि निजी संस्थानों का इन उपर्युक्त पाठ्यचर्याओं को जारी रखने का अपना स्वार्थ भी पर्दे के पीछे कार्य कर रहा है; और कई संस्थान नवीन पाठ्यचर्याओं में आने वाली समस्याओं का समुचित हल तलाश न कर समझौतावादी प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होने लगे हैं। इस प्रकार की प्रवृत्ति की निम्नांकित विशेषताएँ उभरकर सामने आई हैं –

- बी॰एड॰ पाठ्यक्रम में 'विद्यालयी अनुभव' प्राप्त करने के दिनों की संख्या बढ़ने से संस्थानों को विद्यालयों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में दिक्कतें आ रही हैं। या तो विद्यालय अपने यहाँ प्रशिक्षण व अनुभव प्राप्ति की अनुमति देने से हिचकिचाने लगे हैं या बी॰एड॰ प्रशिक्षुओं से अन्य गैर शैक्षणिक कार्य करवाने की शर्त रखने लगे हैं।
- यह भी देखा गया है कि शिक्षण अभ्यास के दौरान बी॰एड॰ प्रशिक्षु विद्यालय जाकर एक भी कक्षा में शिक्षण अभ्यास नहीं करते और सारा समय बी॰ एड॰ से जुड़े या विद्यालय से जुड़े अभिहस्तांकन ही करते रहते हैं।
- संबन्धित विश्वविद्यालयों द्वारा 'विद्यालयी अनुभव कार्यक्रम' हेतु विभिन्न सम्बद्ध संस्थानों की औचक जांच-परख करने के लिए 'टीम' की व्यवस्था करने के सम्बन्ध में अनदेखी का भाव रखना।
- अनावश्यक अभिहस्तांकनों में वृद्धि।
- संस्थानों की दो वर्षीय पाठ्यक्रमों की बजाय तीन, चार या पाँच वर्षीय एकीकृत पाठ्यक्रमों को पाने की लालसा में वृद्धि होना, ताकि उन्हें बी॰ एड॰ दो वर्षीय कार्यक्रम के दोनों वर्षों के 200 विद्यार्थियों की बजाय क्रमश: 300, 400 या 500 विद्यार्थियों को अपने यहाँ दाखिल करने का मौका मिल जाए और फलस्वरूप, उनका लाभ अर्जन और भी बढ़ जाए।
- शिक्षा पाठ्यक्रमों की समयावधि बढ़ने से 'नेट' धारक शिक्षकों की कमी में वृद्धि होना।
- संस्थानों में पहले से पढ़ा रहे शिक्षकों का नवीन पाठ्यचर्या से तालमेल न बिठा पाना।
- ललित कलाओं, अभिनय कलाओं और शारीरिक

शिक्षा से जुड़े शिक्षकों को अल्पावधि के लिए नियुक्त करना, इत्यादि।

उपर्युक्त समस्याओं को व्यवस्थापकों में यथार्थबोध की कमी के रूप में समझा जा सकता है। फ्रेरे का यह स्पष्ट मानना था कि – मुक्ति के लिए संघर्ष शुरू करने में समर्थ होने के लिए यथार्थवादी होना पड़ेगा[2], अर्थात वस्तुस्थिति के ज्ञान के बिना कोई भी नवीन कार्य हाथ में लेना या पर्याप्त विचार-विमर्श के बिना किसी बात या सोच को थोपने से शिक्षा को रूढ़िवादी सोच से मुक्त नहीं किया जा सकता। यदि, शिक्षा को व्यक्ति में 'विवेकीकरण' जागृति का प्रमुख औज़ार बनाना है, तो व्यवस्थापकों को यथार्थवादी होना होगा, यानि उन्हें अपनी पूर्वधारणाओं या पूर्वमान्यताओं को छोडने के लिए सदैव तैयार रहना होगा। पाओलो फ्रेरे विवेकीकरण की प्रक्रिया में ही शिक्षकों की भूमिका खोजते हैं। इसमें आलोचनात्मक चेतना अथवा समीक्षायी चेतना की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वस्तुत:, तभी शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक विकास की ओर अग्रसर होना संभव हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त, भारत में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के संदर्भ में अधोवर्णित समस्याओं का उपस्थित होना चिंता का विषय है –

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में आंतरिक मूल्यांकन व पक्षपात

आंतरिक मूल्यांकन शिक्षक शिक्षा में एक अनिवार्य तत्त्व के रूप में उभरकर सामने आया है। यह माना गया है कि पारंपरिक शिक्षा-प्रणाली में, जिसमें केवल साल में एक या दो बार परीक्षा कराकर बच्चे की सम्पूर्ण योग्यताओं का मूल्यांकन कर लिया जाता था, शिक्षा प्रशिक्षुओं की सभी योग्यताओं का मूल्यांकन नहीं हो पाता था। इसीलिए, समग्रता को ध्यान में रखकर पाठ्यसहगामी गतिविधियों और क्रियाकलापों से विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास को लक्ष्य बनाया गया। इससे विद्यार्थियों के आत्मविश्वास में वृद्धि हुई, जिसे शिक्षक शिक्षा में गुणात्मकता की अवधारणा या समुचित विकास से जोड़ा जा सकता है। वस्तुत:, यह कभी भी विवाद का विषय नहीं रहा है कि पाठ्यसहगामी क्रियाओं के समावेशन से शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में शिक्षार्थियों का ठीक प्रकार से व्यक्तित्व विकास हो पाता है। इन क्रियाओं के ज़रिए विद्यार्थी अनेक उपयोगी सामाजिक कौशलों को सीखते हैं। परंतु, देखा जा सकता है कि इन क्रियाओं हेतु संस्थानों में योग्य शिक्षकों को रखे जाने से बचा जाता है या उन्हें अल्पावधि के लिए रखकर संस्थान अपनी जिम्मेदारियों से विमुक्त हो जाते हैं। यह भी अब एक प्रचलन-सा बन गया है कि मूल विषय पढ़ाने वाले शिक्षक ही कला और शारीरिक गतिविधिओं से जुड़ी पाठ्यचर्याओं को निष्पादित कर दें। इससे नीति निर्माताओं द्वारा विद्यार्थियों में गुणात्मकता के आलोक में जिस समग्र व्यक्तित्व विकास को लक्षित करने का मंतव्य बनाया गया था, वह अधूरा ही रह जाता है। इसे फ्रेरे द्वारा प्रतिपादित 'आचरण' की अवधारणा के अंतर्गत रखकर समझा जा सकता है। 'आचरण' का अभिप्राय है – कर्म व चिंतन में पूरकता। यानि, जो सोचा गया है, उसके अनुरूप कार्य कर व्यवस्था की जाए और यदि, व्यवस्था करने में कोई समस्या आड़े आ रही है, तो पुनः चिंतन या विचार-विमर्श से उस समस्या का समाधान तलाशा जाए, न कि तात्कालिक आसान रास्तों को अपना लिया जाए।

इसके अतिरिक्त, आंतरिक मूल्यांकन में विद्यार्थियों को जाति व लैंगिकता आधारित भेदभाव का सामना भी करना पड़ता है। इसे भी शिक्षक शिक्षा में गुणात्मकता के आलोक में विश्लेषित-विवेचित किए जाने की आवश्यकता है। असल में, वह मूल्यांकन कभी भी गुणात्मक नहीं हो सकता, जिसमें मूल्यांकन करने वाला जाति या लैंगिकता के आधार पर भेदभाव करे। आंतरिक मूल्यांकन में चूँकि, विद्यार्थी की जाति और लैंगिकता का, उसके नाम को जानकर व विद्यार्थी को देखकर पता चल जाता है, इसलिए इस तरह के मूल्यांकन में सदैव ही भेदभाव किए जाने की गुंजाईश बनी रहती है, जो कि संविधानिक प्रावधानों के अनुरूप नहीं है। अत:, यह मानना होगा कि शिक्षक शिक्षा में गुणात्मकता की अवधारणा उपर्युक्त तथ्यों से इतर जाकर परिपूर्णता नहीं पा सकती। स्थिति तब और भी विकट हो जाती है, जब शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान प्रायोगिक घटकों के मूल्यांकन

2 फ्रेरे, वही, पृ॰-12.

हेतु होने वाली मौखिक परीक्षाओं में बाह्य मूल्यांकन के लिए अन्य शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों से अपने यहाँ आने वाले शिक्षकों के द्वारा किए जाने वाले मूल्यांकन को दबाब डालकर या अन्य तरीकों से अपने अनुरूप बदलने की कोशिश करने लगते हैं; और मनमाने तरीके से मौखिक परीक्षाओं के आंतरिक मूल्यांकन के अंक विद्यार्थियों की मौखिक परीक्षा लिए बिना ही अपनी मर्ज़ी से पक्षपाती तरीकों से लगा देते हैं। इस प्रकार दिए जाने वाले अंकों पर संबन्धित विश्वविद्यालयों का कोई नियंत्रण नहीं होता है। यह बात समानता व सामाजिक न्याय के संवैधानिक सिद्धान्त के विरुद्ध है।

शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थानों में शिक्षकों की स्थिति

भारत में अक्सर यह देखा गया है कि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में जहाँ कहीं भी शिक्षक की नियुक्ति स्थाई है, वहाँ प्रबन्धकों द्वारा उनसे मनमाने ढंग से कार्य लेना आसान नहीं होता। ऐसे में जो शिक्षक अपना कार्य ईमानदारी से कर रहे होते हैं, उन्हें अपना कार्य करने में अवरोधकों का सामना नहीं करना पड़ता, परंतु जो शिक्षक अपना कार्य ठीक प्रकार से नहीं कर रहे होते हैं, उनसे कार्य लेना प्रबन्धकों के लिए चुनौती बन जाता है। इस स्थिति के उलट जहाँ शिक्षकों की नियुक्ति अस्थाई है, वहाँ इस बात की संभावना बनी रहती है कि शिक्षकों को प्रबन्धकों की मनमानी का शिकार होना पड़ सकता है। इस मनमानी में अग्रलिखित बिन्दु सन्निहित हो सकते हैं –

- शिक्षकों को संविदा अवधि पूरी होने से पहले ही नौकरी से निकाल देना।
- शिक्षकों को अधिक वेतन पर हस्ताक्षर करवाकर कम वेतन देना।
- शिक्षकों से अनावश्यक गैर शैक्षणिक कार्य करवाना।
- शिक्षकों के कार्यभार में अनावश्यक वृद्धि होना।
- शिक्षकों द्वारा दूसरों के सामने प्रबन्धकों की ओर से अपमानजनक व्यवहार का सामना करना, इत्यादि।

उपर्युक्त तथ्यों व बिन्दुओं के संदर्भ में यह समझा जा सकता है कि जब तक शिक्षकों और प्रबन्धकों को 'विवेकीकरण' प्रक्रिया का हिस्सा नहीं बनाया जाएगा, और कार्य स्थितियों में स्थाई सुधार नहीं किया जाएगा, तब तक व्यवस्थापकों द्वारा उचित प्रबंध करने की अनुशंसा करने के बाद भी शिक्षार्थियों के लिए गुणात्मक शिक्षक शिक्षा की प्राप्ति सदैव ही दिवास्वप्न बनी रहेगी। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में काम करने वाले शिक्षक भी अपनी उत्पीड़नकारी स्थितियों में बदलाव के वास्ते इसलिए प्रयास नहीं करते, क्योंकि वे सभी 'स्वतन्त्रता के भय' से पीड़ित होते हैं। अर्थात्, उन्हें यह भय होता है कि कहीं सुधार हेतु आवाज़ उठाने से उनकी स्थितियाँ और भी बदतर न हो जाएँ। पाओलो फ्रेरे के अनुसार 'स्वतंत्रता का भय' अपनी वर्तमान परिस्थितियों से और अधिक जटिल अथवा विकट परिस्थितियों में फसने का भय है। असल में, यह भय 'संभावित विकृत भविष्य' के प्रकट होने के प्रति है। इस संबंध में फ्रेरे का यह भी मानना था कि जो शिक्षा उत्पीड़कों में 'आत्मलीनता' का व उत्पीड़ितों में 'आत्महीनता' का प्रसार कर रही हो, वह सच्ची शिक्षा नहीं हो सकती।

स्पष्टत:, यदि शिक्षक शिक्षा को गुणात्मक बनाना है, तो 'आत्मलीनता' व 'आत्महीनता' की स्थितियों से बचाव के लिए संवाद के माध्यम से समाधान तलाशना होगा; साथ ही मिथ्या संवाद या प्रतिक्रियावाद से भी बचना होगा, जो केवल आक्रोश प्रतिस्थापन के रूप में प्रयोग किया जाता है, न कि व्यवस्था में सुधार के लिए। फ्रेरे ने अपने शिक्षा संबंधी चिंतन में इसे संकीर्णतावादियों[3] (मतान्ध, रूढ़ आत्मपरकतावादी, वैचारिक अलगाववाद के पक्षकार) से बचाव के रूप में विवेचित किया है।

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में निहित मिथ्या अभ्यास व असंगतियाँ

भारत में बी॰एड॰ व अन्य पाठ्यक्रम सम्बन्धी शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थानों में कई विश्वविद्यालय शिक्षकों का चयन करने से पहले यह अनिवार्यता रखते हैं कि शिक्षकों के चयन के लिए चयन समिति का गठन तभी किया जाएगा, जब कुछ पूर्व निश्चित संख्या में खाली पद/ पदों के लिए आवेदकों ने आवेदन कर दिया हो। इस संबंध में, यह पाया गया है कि उपर्युक्त वांछनीय प्रक्रिया को कई

3 फ्रेरे, वही, पृ॰4-3-.

बी॰एड॰ शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान इस रूप में पूरा कर देते हैं कि वे अपने पास रखे पुराने आवेदनों को ही आवेदकों की ओर से झूठे हस्ताक्षर कर संबन्धित विश्वविद्यालय को प्रेषित कर देते हैं। फलस्वरूप, विश्वविद्यालय संबन्धित बी॰एड॰ शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान के लिए चयन समिति का गठन करने की स्वीकृति दे देते हैं। कई विश्वविद्यालयों में तो ऐसी उपर्युक्त व्यवस्था भी नहीं है। ऐसे में संबन्धित बी॰एड॰ संस्थान किसी राष्ट्रीय अखबार में खाली पदों का विज्ञापन निकालकर वर्ष में जब चाहें अपने यहाँ शिक्षकों की नियुक्ति कर लेते हैं।

इसी प्रकार, यह भी देखा गया है कि निजी बी॰एड॰ संस्थान जिन भी शिक्षकों को अपने यहाँ चयनित करते हैं, उनके साथ वे पहले से ही वेतन सम्बन्धी मौखिक और लिखित समझौते कर लेते हैं। कई दफ़ा तो, वे चयनित शिक्षक विशेष को मूल कुल वेतन का एक-तिहाई या एक-चौथाई वेतन ही प्रदान करते हैं, परंतु कागज़ी कार्रवाही को इस तरह पूरा करते हैं कि कानूनी तौर पर वे जाँच में पकड़े न जाएँ। यह भी होने लगा है कि चयनित शिक्षक विशेष को चयन पत्र की मूल प्रति पर हस्ताक्षर करवा मूल प्रतिलिपि दी ही नहीं जाती। असल में, भारत में किसी सरकारी संस्थान में पढ़ाने वाले शिक्षकों के समान वेतन व भत्ते प्राप्त करना आज भी निजी बी॰एड॰ संस्थानों में पढ़ाने वाले अधिकतर शिक्षकों को मयस्सर नहीं है। जिन निजी बी॰एड॰ संस्थानों में यह कहा जाता है कि हम अपने यहाँ शिक्षकों को पूरा वेतन व भत्ते देते हैं, उनमें से भी अधिकतर संस्थान असल में शिक्षकों से पूरे वेतन पर हस्ताक्षर करा या 'ब्लैंक चैक बुक' पर हस्ताक्षर करवा उनको कम वेतन देते हैं या उनसे एक निश्चित मात्रा में वेतन वापिस करने को कह देते हैं। कई दफ़ा तो इन शिक्षकों को संस्थान द्वारा उनके नाम पर खोले गए खाते की संख्या और बैंक का नाम तक पता नहीं होता, क्योंकि संस्थान से जुड़ा बैंक इन शिक्षकों से पहले ही लिखवा लेता है कि उनके खाते का सारा लेन-देन संस्थान के अधिकारी ही करेंगे। ऐसे में बैंक शिक्षकों की पास बुक, चैक बुक व डैबिट कार्ड इत्यादि भी शिक्षकों को देने की बजाय संस्थान को ही दे देता है। इसके अलावा शिक्षकों के खातों में कितने पैसे डाले गए या निकाले गए, इसका रिकार्ड भी बैक एस॰एम॰एस॰ के ज़रिए शिक्षकों के मोबाइल नंबर पर न भेजकर संस्थान के मोबाइल नंबर पर भेजते हैं। कई संस्थान तो संबन्धित विश्वविद्यालय की ओर से होने वाले निरीक्षण से एक या दो दिन पहले ही शिक्षकों को यह बताते हैं कि उनका कुल वास्तविक वेतन कितना है। असल में यह वास्तविक वेतन शिक्षकों को मिलने वाले वेतन का लगभग तीन या चार गुना होता है।

यह एक विडंबनीय स्थिति है कि संबन्धित विश्वविद्यालय, एन॰सी॰टी॰ई॰ व एन॰ए॰ए॰सी॰ इत्यादि निकायों और उनके द्वारा प्रतिनियुक्ति पर भेजे जाने वाले निरीक्षण दल के शिक्षक व अधिकारी यह मानकर चल रहे हैं कि निजी बी॰एड॰ संस्थानों में शिक्षक यदि कुल अपेक्षित वेतन का एक-तिहाई या एक-चौथाई भी प्राप्त कर लें, तो भी वह बी॰एड॰ प्रशिक्षुओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर सकते हैं; और उनको विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने के लिए मना भी सकते हैं। इसके अतिरिक्त, ये निरीक्षण दस्ते चूँकि, औचक निरीक्षण दस्ते नहीं होते, इसलिए यह पाया गया है कि संबन्धित संस्थान इनके आने से पहले ही उपस्थिति 'रजिस्टर' को झूठे हस्ताक्षरों से पूरा कर लेते हैं; और संबन्धित शिक्षकों को दर्शा देते हैं। वस्तुत:, संस्थान द्वारा अधिसंरचना सम्बन्धी वांछनीय मानकों पर खरा उतरने के पश्चात् निरीक्षण दस्ते द्वारा पूछे जाने वाले सवाल भी मात्र औपचारिकताभर बनकर रह जाते हैं। स्पष्टत:, इन औपचारिकताओं की अभिपूर्ति करने वाले बी॰एड॰ संस्थानों से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की समझ की उम्मीद रखना निरर्थक है। ऐसे संस्थानों में करवाए जाने वाली गोष्ठियाँ, सम्मेलन व 'संकाय विकास कार्यक्रम' भी सदैव ही प्रश्न के घेरे में बने रहते हैं। इसके अलावा, विश्वविद्यालयों में भी अब इस बात का प्रचलन बढ़ता देखा जा सकता है कि वे बी॰एड॰ जैसे पाठ्यक्रमों को अपने परिसर में न कराकर उपर्युक्त संस्थानों में कराने को महत्त्व देने लगे हैं। निश्चित तौर पर, यदि ऐसे संस्थानों से शिक्षक तैयार होकर विद्यालयी शिक्षा में प्रवेश करेंगे तो शिक्षा में गुणात्मकता की अवधारणा अत्याधिक गंभीर रूप से प्रभावित होगी। इस गंभीर विसंगती को फ़ेरे

द्वारा प्रतिपादित 'मानुषीकरण और अमानुषीकरण' की अवधारणा के अंतर्गत रखकर विवेचित किया जा सकता है। फ्रेरे की दृष्टि में मानुषीकरण से तात्पर्य मनुष्य बनने की प्रक्रिया से है। दूसरे शब्दों में, यह उन परिस्थितियों से विमुक्ति की प्रक्रिया है, जो मनुष्य को अमानुष बनाती हैं। अमानुष होने का अर्थ है – मनुष्यों का वस्तुओं में बदल जाना अर्थात अपने व अन्यों के प्रति संवेदनारहित होते जाना। इस संबंध में 'उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र' पुस्तक की विशेषता बताते हुए रमेश उपाध्याय लिखते हैं कि इसका आधारभूत विचार यह है कि जिस समाज में प्रभुत्वशाली अभिजनों का एक अल्पतन्त्र बहुसंख्यक जनता पर शासन करता है, वह अन्यायपूर्ण तथा उत्पीड़नकारी समाज होता है। ऐसे समाज की व्यवस्था मनुष्यों को वस्तुओं में बदलकर उन्हें अमानुषिक बनाती है, जबकि मनुष्यों का ऐतिहासिक और अस्तित्वमूलक कर्त्तव्य पूर्णतर मनुष्य बनना है।[4] मनुष्य और अमनुष्य होने की स्थिति को निम्नांकित बिन्दुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है –

मनुष्य होने की पहचान	अमनुष्य होने की पहचान
• कर्त्ता बनना • आचरण करना • आलोचनात्मक रूप से सतत चेतनशील होना • स्वावलंबन • उत्तरदायित्व • संवेदनशीलता • प्रेमविहीनता की स्थिति के विरुद्ध संघर्षशील होना	• मनुष्य का – • वस्तु में बदल जाना • मतान्ध होना • प्रेमविहीन होना

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से यह समझा जा सकता है कि शिक्षक शिक्षा में गुणात्मकता का सरोकार मानुषीकरण की प्रक्रिया से गहरे तौर पर जुड़ा हुआ है।

शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थानों में गोष्ठियों, सम्मेलनों, कार्यशालाओं, कार्यक्रमों इत्यादि की अनिवार्यताएँ

भारत में किसी भी शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान की गुणवत्ता इस बात से भी मापी जाती है कि वह संस्थान शैक्षिक सत्र में कितनी गोष्ठियों, सम्मेलनों, कार्यशालाओं, कार्यक्रमों इत्यादि का आयोजन करता है। यह विदित है कि केवल आयोजन करवाना मात्र ही गुणवत्ता का परिचायक नहीं हो सकता। गोष्ठियों, सम्मेलनों, कार्यशालाओं, कार्यक्रमों इत्यादि के आयोजन में इस बात का सदैव ही ध्यान रखना पड़ता है कि इनमें शोध पर्चा प्रस्तुतीकरण संबंधी गुणवत्ता के एक निश्चित स्तर को बनाए रखा जाए। वर्तमान समय में शोध पर्चा प्रस्तुतीकरण के संबंध में गुणवत्ता अधोलिखित बिन्दुओं से प्रभावित हो रही है –

- शोध पर्चों का वांछित मानक स्तर के अनुरूप न होना।
- मिथ्या प्रतिभागियों द्वारा पर्चा प्रस्तुतीकरण संबंधी प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेना।
- संस्थान द्वारा संबन्धित सरकारी या गैर सरकारी संस्था से आर्थिक सहायता प्राप्त करने हेतु कागज़ी कार्रवाही को मिथ्या गतिविधिओं से पूरा करना।
- नौकरियों में यू०जी०सी० द्वारा वांछित अंक प्राप्त करने हेतु व्यक्तियों द्वारा पर्चा प्रस्तुतीकरण करना।
- संस्थान का निरीक्षण करने हेतु आने वाले दस्ते से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों को गोष्ठियों, सम्मेलनों, कार्यशालाओं, कार्यक्रमों इत्यादि में मुख्य वक्ता या अतिथि बनाकर उन्हें इस बात का पारितोषिक प्रदान करना कि उन्होंने संस्थान के पूर्व में किए गए निरीक्षण में संस्थान को 'क्लीन चिट' प्रदान कर दी थी।

स्पष्टत:, किसी भी गोष्ठी, सम्मेलन, कार्यशाला, कार्यक्रम इत्यादि में उपर्युक्त बिन्दुओं की उपस्थिति इस प्रकार की गतिविधियों की गुणवत्ता को मिथ्या गुणवत्ता में परिवर्तित कर देती है, जिससे संस्थानों को बचने की आवश्यकता है। अन्य शब्दों में, संस्थानों को स्थितियों को ज्यों-का-त्यों बनाए रखने वाली 'चुप्पी की संस्कृति' को छोड़कर 'दख़लअंदाज़ी की संस्कृति' में खुद को प्रवृत्त करना होगा। इससे शिक्षा संबंधी विभिन्न सरोकारों को समझकर गुणवत्तापूर्ण शिक्षक शिक्षा को लक्षित किया जा सकना संभव हो सकेगा।

4 फ्रेरे, वही, पृ०-XVIII.

सारबद्ध निष्कर्ष

यद्यपि, वर्तमान समय में भारत में शिक्षक शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर गुणात्मकता संबंधी सरोकारों को संवाद प्रक्रिया में पर्याप्त स्थान मिल रहा है; और व्यवस्थापक, शिक्षक, प्रबन्धक, शिक्षाविद् इत्यादि शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयामों व पक्षों के प्रति पहले से अधिक सजग भी हुए हैं, तथापि यह समझना होगा कि शिक्षक शिक्षा सदैव ही सामाजिक कल्याण और निजी लाभ के बीच साम्य बिन्दु के रूप में विवेचित-विश्लेषित की जाती रही है। जहाँ एक ओर नीति निर्धारकों के कंधों पर शिक्षा से वंचित तबके तक गुणात्मक शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करने की ज़िम्मेदारी है, तो वहीं दूसरी ओर तेज़ी से बदल रही विश्व-व्यवस्था के अंतर्गत भारत में शैक्षिक विकास को पटरी पर बनाए रखने की ज़िम्मेदारी भी है।

ऐसे में भारत सरकार के समक्ष सामाजिक कल्याण हेतु शिक्षक शिक्षा के विभिन्न महत्त्वपूर्ण लक्ष्य नवीन चुनौतियों से लगातार प्रभावित हो रहे हैं। इस सबके बीच सुधिजनों को यह भी देखना होगा कि शिक्षक शिक्षा में गुणात्मक नवाचारों को प्रतियोगितापूर्ण बढ़ावा मिलता रहे; और शिक्षा का वस्तुकरण भी न होने पाए।

तथ्यपरक व अनुचिंतनात्मक विवेचन-विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि उद्देश्यों की अभिपूर्ति में पाओलो फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचारों; जैसे – संवाद, विवेकीकरण, शिक्षा की बैंकीय अवधारणा, समीक्षाई चेतना, चुप्पी की संस्कृति, दख़लअंदाज़ी की संस्कृति, आत्मलीनता व आत्महीनता, मानुषीकरण व अमानुषीकरण, पालतूकरण इत्यादि की समझ भारतीय शिक्षक शिक्षा के संदर्भ में गुणात्मक संभावनाओं के नए द्वार खोल सकती है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

- एन॰आई॰ई॰पी॰ए॰ (1994), जनशिक्षा आंदोलन और पाओलो फ्रेरे (पाओलो फ्रेरे से ओम्नी पत्रिका की बातचीत), परिप्रेक्ष्य, वर्ष 1, अंक 1, अप्रैल, पृ॰-173-184.
- किरण, चाँद (1995), शिक्षा के आधारभूत सिध्दांत, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
- कुमार, कृष्ण (1998), शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व, ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, दिल्ली।
- कृष्णमूर्ति, जे॰ (1998), शिक्षा संवाद : विद्यार्थियों और शिक्षकों से (अनुवाद : डी॰ एस॰ वर्मा), कृष्णमूर्ति 'फाउंडेशन', वाराणसी।
- जोशी, रामशरण (1996), आदिवासी समाज और शिक्षा (अनुवाद : अरुण प्रकाश), ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली।
- दूबे, श्यामाचरण (2000), शिक्षा समाज और भविष्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- नाईक, जे॰ पी॰ (1998), शिक्षा आयोग और उसके बाद (अनुवाद : सरला मोहनलाल), वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान।
- नाईक, जे॰ पी॰ (1998), समानता, गुणवत्ता और संख्यात्मक विस्तार : भारतीय शिक्षा का दुर्ग्राह्य त्रिकोण (अनुवाद : सरला मोहनलाल), वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान।
- पाण्डेय, रामशक्ल (2005), पाओलो फ्रेरे, विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ॰-163-169.
- फ्रेरे, पाओलो (1997), उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र (अनुवाद : रमेश उपाध्याय), ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, नई दिल्ली।
- फ्रेरे, पाओलो (1997), प्रौढ़ साक्षरता: मुक्ति की सांस्कृतिक कार्रवाही (अनुवाद : जवरीमल्ल पारख), ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, नई दिल्ली।
- फ्रेरे, पाओलो (2010), उम्मीदों का शिक्षाशास्त्र (अनुवाद : विपिन), ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, नई दिल्ली।
- भारत सरकार (1968), शिक्षा और राष्ट्रीय विकास (शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन, 1964-66), शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।
- भारत सरकार (1993), शिक्षा बिना बोझ के (यशपाल समिति), राष्ट्रीय सलाहकार समिति का प्रतिवेदन (अनुवाद : राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली), शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
- रज़ा, मुनिस (1996), शिक्षा और विकास के सामाजिक आयाम (अनुवाद : सुजाता राय), ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, नई दिल्ली।

- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (2000), विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (2006), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- विश्वंभर (2006), शिक्षा में निजीकरण का सवाल; प्रतिश्रुति, शिक्षा विमर्श, वर्ष 7, अंक 3, मई-जून।
- सदगोपाल, अनिल (2000), शिक्षा में बदलाव का सवाल – सामाजिक अनुभवों से नीति तक, ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, नई दिल्ली।
- Freire, Ana Maria Araujo & Macedo, Donaldo (Ed.) (1998), The Paulo Freire Reader, The Coninuum Publishing Company, New York, USA.
- Govt. of India (2009), The Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009, The Gazette of India, Extraordinary, 27th Aug., 2009.